"जल संसाधन के क्षेत्र में भावी चुनौतियाँ"
विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी
16-17 दिसम्बर, 2003, रुड़की (उत्तरांचल)

उत्तरांचल में जल संसाधन विकास की परम्परा एवं भावी सम्भावनायें

गोपाल प्रसाद जुयाल
केन्द्रीय मृदा एवं जल संरक्षण अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान,
देहरादून

सारांश

उत्तरांचल में जल संसाधन विकास व संरक्षण की परम्परा काफी पुरानी है। उन्नत वास्तुशिल्प से देवस्थानों की भांति जगह-जगह बनाये गये 'नौले' इसके उदाहरण है। 'चाल', 'खाल' व 'ताल' की परम्परा भी यहां प्राचीन है। छोटे-छोटे जल स्रोतों को मीलों दूर 'गूलों' के माध्यम से ले जाकर व आवश्यकता पड़ने पर 'होजों' में एकत्रित कर पथरीली जमीन पर भी भरपूर अनाज उगाया जाता है। लेकिन समय के साथ इन पारम्परिक तकनीकों की उपेक्षा हुयी है। आज उत्तरांचल में पानी का गम्भीर संकट है। केवल 10 प्रतिशत भूमि ही सिंचित है और पीने के लिये भी दूर से पानी लाना पड़ता है।

जल संसथानों के समुचित उपयोग हेतु पारम्परिक ज्ञान के साथ आधुनिक तकनीकों का अपनाया जाना अति आवश्यक है। नीचे बहने वाली नदी-नालों का पानी 'हाईड्रम' मशीन द्वारा ऊपरी खेतों तक पहुंचाया जा सकता है। कम खर्च में बनने वाले पालिथीन हौज व गूल भी उपोगी हो सकते हैं। सिंचाई में पानी का ह्रास रोकने में 'स्प्रिंक्लर' व 'ड्रिप' प्रणालियां उपयोगी होंगी। छत से गिरने वाले वर्षा जल को प्रयोग कर पानी की कमी को कम किया जा सकता है। भूमिगत पी.वी. सी. पाइप का प्रयोग कर पानी की संवहन क्षति को रोका जा सकता है। जल संसाधनों के विकास में जन-सहभागिता का होना बहुत आवश्यक है ताकि सभी को उसका काम मिल सके। जल-संसाधनों को बहुउपयोगी व बहुआयामी बनाने हेतु सिंचाई के साथ-साथ मत्स्य पालन, घराट व लघु पन-बिजली घरों को समन्वित किया जाना चाहिये। जल-संसाधनों की सुरक्षा, संरक्षण, सम्वर्धन एवं गुणवत्ता हेतु एकीकृत जलागम प्रबन्ध की नितान्त आवश्यकता है।

1. भूमिका :

भारत का जल-स्तम्भ कहा जाने वाला उत्तरांचल का हिमालयी क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों में फलीभूत है। एशिया का सबसे विशाल जल-विकास संजाल (नैटवर्क) उत्तरांचल हिमालय को प्रदत्त है। गंगा, यमुना, कोसी, टौंस आदि अनेक नदियां यही से निकलती हैं जो देश के एक बड़े भूभाग

को जल आपूर्ति करती है। लेकिन इतनी अधिक जल उपलब्धता के बावजूद यहां की 10 प्रतिशत खेती ही सिचिंत है। अच्छी बारिश होने के बावजूद बरसाती पानी का जयादातर भाग ढलानों पर बह जाता है और अनुपलब्ध होता है। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं को पीने का पानी मीलों दूर से सिर पर ढोकर लाना पड़ता है। नदियों का पानी उपयोग में नहीं लाया जा सकता क्योंकि गांव व खेत उनसे काफी ऊपर रहते हैं। मैदानी भागों की भांति यहां भूमिगत जल भी प्रयोग के लिये उपलब्ध नहीं है। पानी की उपलब्धता के लिये ले-दे कर गिने चुने जल स्रोत, धारे, सोते, गधेरे हैं जिनमें पानी अवपृष्ठ (सब-सरफेस) प्रवाह द्वारा साल भर उपलब्ध होता है। हाल के वर्षों में जनसंख्या वृद्धि, वन विनाश व विकास गतिविधियों के चलते जल-स्रोतों के सूखने एवं उनके प्रदुषित होने से जल संकट और भी गम्भीर हो गया है। अत: उत्तरांचल में जल संसाधनों के संरक्षण, संर्वधन एवं विकास की नितान्त आवश्यकता है।

2. परम्परागत जल प्रबन्ध :

मध्य हिमालय क्षेत्र में स्थित उत्तरांचल 53 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में फैला है तथा यहां लगभग 85 लाख जनसंख्या निवास करती है। इस राज्य का अधिकांश भूभाग (93 प्रतिशत) पहाड़ी है। अधिकांश जनसंख्या समुद्रतल से 600-2000 मीटर ऊँचें भूभाग में निवास करती है और कृषि कार्यों द्वारा जीवन यापन करती है। कुल भूमि का केवल 15 प्रतिशत ही कृषि योग्य है और कृषि भूमि का केवल 10 प्रतिशत ही सिंचित है। मानसून महीनों (जून-सितम्बर) में अधिकांश क्षेत्रों में अच्छी वर्षा होती है लेकिन बारिश का अधिकतर भाग ढालों पर अपवाह के रूप में बह जाता है और अनुपलब्ध होता है। समय पर वर्षा न होने की स्थिति में अक्सर इस क्षेत्र को सूखे की समस्या का सामना करना पड़ता हैं।

उत्तरांचल के पर्वतीय क्षेत्रों में जल उपलब्धता का मुख्य स्रोत वर्षा है। कुल वार्षिक वर्षा के दो तिहाई भाग से अधिक मानसूनी वर्षा के रूप में प्राप्त होती है। वर्षा का अधिकांश सतह पर पृष्ठ अपवाह (सरफेस रनआफ) के रूप में बह जाता है और शेष भाग भूमी के अन्दर प्रवेश कर अवपृष्ठ (सब सरफेस) जल प्रवाह के रूप में बहता हुआ कुछ स्थानों पर सतह पर प्रकट होता है। स्थानीय लोगों ने इन्ही जल-स्रोतों को विकसित कर पेयजल व सिंचाई के लिये इस्तेमाल किया। इन जलस्रोतों की निस्तारण दर 1 लीटर प्रति सेकन्ड से लेकर 20 लीटर प्रति मिनट तक आंकी गयी है।

जलाशयों के निर्माण को हमारी संस्कृति में ईश्वर के पूजन के तुल्य माना गया है। अग्नि पुराण मे कहा गया है - विष्णु च वरूण च सम्पूज्य जलाशय निर्माण कारयेत (विष्णु तथा वरूण का पूजन करने के साथ जलाशय का निर्माण करें)। इन पौराणिक सीखों और निर्देशों को उत्तरांचल की जनता एवं राजाओं ने व्यवहार में उतारा। जल स्रोतों को बहुत सुन्दर कारीगरी व वस्तु शिल्प से 'नौलो' व 'धारों' के रूप में विकसित किया। इन नोलों को लोग मन्दिर की भांति मानते थे। कई प्राचीन नौलों में भगवान की प्रतिमायें आज भी देखी जा सकती है जहां स्थानीय लोग पुजा-अर्चना करते है।

यह नौले जल प्रबन्धन की सोच और कार्य पद्धतियों से ही नहीं परिचित कराते वरन् जनसाधारण व राजाओं की जल के प्रति आस्था को भी प्रदर्शित करते हैं। आज भी यही नौले गांवो और कस्बों में पेय जल की आपूर्ति के विश्वसनीय साधन हैं। कुमांऊ में विशेषकर इन नौलों की बहुलता है; जिनमें कुछ प्रमुख नौलों का संक्षिप्त विवरण निम्न है (लो.वि.सं., 2003) :

2.1 बदरीनाथ जी का नौला :

सातवीं शताब्दी में गरूड़ बैजनाथ को अपनी राजधानी बनाने के साथ कत्यूरी राजाओं ने गढ़सेर (जिला बागेश्वर) में भगवान बदरीनाथ का मन्दिर तथा यह नौला बनवाया।

2.2 खोली भीतर का नौला :

द्वाराहाट (जिला अल्मोड़ा) में स्थित यह कलात्मक नौला लोक संस्कृति क़ा नमूना हैं परिजन अभी भी नववधू को नौला पूजन के साथ नई गृहस्थी का शुभारम्भ करवाते हैं। लोक जीवन में जल के प्रति सम्मान का यह जीवन्त प्रतीक है।

2.3 जान्ह्वी नौला :

गंगोलीहाट (पिथोरागढ़) में राजा रामचन्द्र देव द्वारा महाकाली का मन्दिर तथा यह नौला बनवाया गया। किंवदन्ती है कि उस नौले में अम्बिका और चमुण्डा देवियां स्नान करने आती थी। सन् 1263 में बने इस नौले का अभी भी भरपूर उपयोग होता है।

2.4 बालेश्वर का नौला :

चम्पावत में बालेश्वर का नौला कुमाऊ के इतिहास में चन्द राजाओं के पदार्पण का गवाह और उत्तराखण्ड के वास्तु शिल्प की उत्कृष्टता का भव्य नमूना है। राजा धोरचन्द के राज्य काल सन् 1272 में बनकर तैयार इस नौले में बुद्ध की मूर्ति विस्मयकारी है।

2.5 एक हथिया नौला :

चम्पावत के समीप ढकना गांव के ऊपरी हिस्से में घने-निर्जन जंगल में कोहाधार चम्पावत पैदल मार्ग पर निर्मित यह नौला प्रस्तर कला का अनुपम नमूना है। किसी एक हाथ वाले मिस्त्री द्वारा बनाया गया नौला एक हथिया के नाम से प्रसिद्ध है।

2.6 थरकोट को नौला :

कत्यूरी राजाओं द्वारा थरकोट में निर्मित एक मन्दिर के क्षतिग्रस्त हो जाने पर उसके कटुवा तथा नक्काशीदार पत्थरों से ग्रामीणों द्वारा इस नौले का निर्माण किया गया। इसका उपयोग और रखरखाव गांव वासी अभी भी करते हैं।

2.7 हाथी नौला :

नौलों के नगर के नाम से विख्यात अल्मोड़ा 1563 में चन्द राजाओं की राजधानी बना। जल की व्यवस्था के लिये बड़ी संख्या में नौलों का निर्माण किया गया। इसकी विशालता के आधार पर इसका नाम हाथी नौला पड़ा।

2.8 कपीना नौला :

अल्मोड़ा के कपीना मोहल्ले में एक भव्य नौला बना है जिसकी भीतरी दीवार पर शेषशायी विष्णु की मूर्ति है। नौले की उत्पादन क्षमता अभी भी काफी है। नलों से जलापूर्ति कम होने पर यह नौला काफी बड़ी जनसंख्या को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराता है।

इन नौलों में जल वितरण एवं प्रबन्धन की अभी भी कहीं कहीं बहुत वैज्ञानिक पद्धति है। गांव के लोगों को पानी राशनिंग द्वारा दिया जाताहै। उदाहरणार्थ प्रतिदिन दिये जाने वाले पानी के कनस्तरों की संख्या परिवार के सदस्यों के अनुसार निश्चित की जाती है। हां, यदि किसी परिवार में शादी-ब्याह या अन्य कोई आयोजन हो तो प्रबन्धन की अनुमति से विशेष पानी का कोटा देने की भी व्यवस्था है। यह सारी व्यवस्था गांव वालों की चुनी प्रबन्ध समिति करती है।

3. भावी सम्भावनायें :

बढ़ती आबादी एवं आवश्यकताओं के चलते उत्तरांचल में जल मांग व उपलब्धि में बहुत अन्तर आ गया है। इस अन्तर को पूरा करने के लिये पारम्परिक और आधुनिक ज्ञान का सामंजस्य होना आवश्यक है। कुछ आधुनिक तकनीकें, जो पर्वतीय जल-प्रबन्ध में उपयोगी सिद्ध हो सकती है, निम्नलिखित है :

3.1 हाइड्रम :

यह एक जल शक्ति से चलने वाला स्वचालित पम्प है जिसमें बिना बिजली या तेल इस्तेमाल किये हुये नदी-नालों का पानी ऊपरी खेतों/गांवो तक जहुंचाया जा सकता है। यह मशीन चौबीसों घन्टे कार्य कर सकती है और रखरखाव में कोई विशेष खर्चा नहीं आता। मशीन में आने वाले

पानी के 1/7 से 1/10 भाग तक को यह 152 मीटर तक उठा सकती है। सामान्यत: 45 मीटर तक आसानी से पानी उठाया जा सकता है।

3.2 पालिथीन हौज :

वर्तमान में बनाये जाने वाले सीमेन्ट के टैंक (हौज) की लागत बहुत अधिक आती है। क्योंकि सीमेन्ट महंगा है। सीमेन्ट के स्थान पर पालिथीन शीट का उपयोग कर पानी का रिसाव रोका जा सकता है और लागत को कम किया जा सकता है। इसके लिये वांछित आकार एवं क्षमता के लिये गढ्डा खोद लिया जाता है। इसकी दीवारों की ढाल 1:1 रखी जाती है। अच्छी तरह गढ्ढे की लिपाई-पुताई करने के पश्चात, ताकि कंकड़-पत्थर जैसी नुकीली चीजें न रहें, 1000 गेज (250 माइक्रान) मोटी लो डेनसिटी पालिएथिलीन (एल0डी0पी0ई0) फिल्म बिछा दी जाती है। तत्पश्चात शीट के ऊपर चपटे पत्थरों की चिनार्ठ कर आवरण दे दिया जाता है ताकि पालिथीन शीट सुरक्षित रहे। इस प्रकार बनाये गये 20-50 धन मीटर क्षमता के पलिथीन हौजों का निर्माण फकोट जल समेट परियोजना एवं विवेकानन्द पर्वतीय प्रयोगशाला, अल्मोड़ा में सफलतापूर्वक किया गया है। (जुयाल एवं गुप्ता, 1985, श्री वास्तव, 1984), इसी प्रकार गूलों को भी पालिथीन शीट के प्रयोग से बनाया जा सकता है। सीमेन्ट के मुकाबलें इसमें आधा खर्चा ही आता है।

3.3 स्प्रिंक्लर एवं ड्रिप सिचाई :

पर्वतीय क्षेत्रो में पानी सीमिति होता है और जमीन पथरीली जिसमें रिसाव द्वारा काफी जल-हानि होती है। सिंचाई जल की बचत के लिये स्प्रिंक्लर (छिड़काव) तथा ड्रिप (बूंद) सिंचाई लाभप्रद है। स्प्रिक्लर विधि में जहां छिड़काव द्वारा सिंचाई की जाती है, ताकि पानी शीघ्र रिस कर बेकार न जाय, ड्रिप सिंचाई में पौधों की जड़ पर बारीक पाइप द्वारा बूंद-बूंद कर पानी टपकाया जाता है। यह विधियाँ सब्जियों तथा बागवानी फसलों के लिये विशेष लाभदायक है। पहाड़ी क्षेत्रों में ढालदार भूमि होने के कारण गुरूत्व शक्ति के फलस्वरूप इन उपकरणों को चलाने हेतु आवश्यक दबाव स्वत: ही प्राप्त हो जाता है और किसी मोटर या पम्प की जरूरत नहीं पड़ती। यह प्रणालियां 10-15 मीटर के जल दबाव से क्रियान्वित हो सकती है जो पहाड़ी क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध है। इन विधियों द्वारा 50-75 प्रतिशत तक पानी की बचत हो सकती है। साथ ही पौधों में खाद, कीटनाशक आदि का वितरण पानी के साथ ही किया जा सकता है। पर्वतीय क्षेत्रों के अनुरूप छोटे सीढ़ीदार खेतों में प्रयुक्त होने लायक स्प्रिंक्लर तथा ड्रिप सिंचाई प्रणाली का अभिकल्पन तथा निर्माण किया जाना आवश्यक है।

3.4 छत के पानी का एकत्रीकरण :

पहाड़ी क्षेत्रो में मानसून के अलावा भी यदा-कदा अच्छी वारिश होती रहती है। छत पर गिरने वाले वर्षा जल को टंकी या हौज में एकत्र कर नहाने, कपड़े धोने जैसी घरेलू जरूरतों

तथा पशुओं के पीने के लिये प्रयोग में लाया जा सकता हैं। मिजोरम में हर घर में छत के पानी को एकत्र कर प्रयोग में लाने की प्रथा काफी पुराने समय से है।

3.5 भूमिगत पाइप प्रणाली :

यह प्राय: देखा गया है कि गूलें खुले क्षेत्र में होने के कारण टूट-फूट जाती है और भूस्खलन आदि के होने पर नष्ट भी हो जाती है। इनमें रिसाव द्वारा भी काफी पानी की क्षति होती है। अत: पर्वतीय क्षेत्रों में पी.वी.सी. या जी.आई. की भूमिगत पाइप लाइन का प्रयोग अधिक लाभप्रद है। इसमें रखरखाव पर भी खर्चा कम आता है।

4. जलागमम प्रबन्ध :

जल संसाधनों के संरक्षण, संर्वधन एवं सुरक्षा के लिये जलागम का वैज्ञानिक प्रबन्ध अत्यावश्यक है कयोंकि जलागम ही जल की जन्मदाता है। जलागम प्रबन्ध में जनता की सहभागिता भी परमावश्यक है। जलागम में उचित मात्रा में वन का होना व उसकी सुरक्षा जरूरी है। कृषि क्षेत्र, चारागाह व बंजर भूमि को आवश्यक भूमि संरक्षण उपायों का प्रयोग कर उपयोग में लाया जाना चाहिये। वनीकरण हेतु ऐसी वृक्ष प्रजातियों का चयन किया जाना चाहिये जो वर्षा जल को संरक्षित करें और भूक्षरण को रोकें। जलागम क्षेत्र में अपवाह जल को कम करने व भूमिगत जल को बढ़ाने के उपाय जल-स्रोतों की वृद्धि में सहायक होगें।

5. जन-सहभागिता :

जल संसाधन सामूहिक प्रयोग की वस्तु है अत: उनके विकास व प्रयोग में जन-सहभागिता का होना बहुत आवश्कयक है। तभी प्रत्येक व्यक्ति को उसका समुचित लाभ प्राप्त हो सकता है। यह देखा गया है कि जो योजनायें सिर्फ सरकार द्वारा बनायी जाती हैं वे टिकाऊ नहीं हो पाती क्योंकि आम जनता उनके रखरखाव में रूचि नहीं रखती और उसका दुरूपयोग करने में भी संकोच नही करती। इसके विपरीत जिन योजनाओं में उनका अपना योगदान होता है उसकी देखभाल वे पुरी तनमयता से करते हैं। केन्द्रीय मृदा एवं जल संरक्षण अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान देहरादून द्वारा जन-सहभागिता के मूल आधार पर एक जल विकास परियोजना क्रियान्वित की गयी। देहरादून के रायपुर ब्लाक के अन्तर्गत कालीमाटी ग्राम में भूमिगत जल को 2,60,000 लीटर क्षमता के टैंक में एकत्र किया गया। इसके फलस्वरूप काली माटी की 16 हेक्टेयर भूमि पम्प द्वारा तथा इसके नीचें स्थित भोपाल पानी गांव की 25 हेक्टेयर भूमि पाइप लाइन द्वारा सिंचित की गयी। इस परियोजना में किसानो का अंश 35 प्रतिशत तक रहा जिसमें उन्होंने निर्माण कार्य हेतु मजदूरी का योगदान किया और आवश्यक सामग्री पत्थर, रेत आदि इकठ्ठा किया।

इस कार्य से पास स्थित पाववाला सोडा के ग्रामवासी इतने प्रभावित हुये कि इन्होंने स्वयं पहल कर अपने गांव में भी दूर स्थित जल-स्रोत से पानी लाकर तालाब का निर्माण किया, जिसमें उनका स्वयं का योगदान 23 प्रतिशत तक था।

6. सन्दर्भ :

1. लोक विज्ञान संस्थान (2003), कुमाऊ के ऐतिहासिक नौले, जल संस्कृति, देहरादून

2. जुयाल, जी.पी. तथा गुप्ता, आर.के. (1985), कन्स्ट्रकशन आफ एल.डी.पी.ई. लाइन्ड टैंक्स इन हिल्स-ए केस स्टडी, इन्डियन जरनल आफ स्वायल कन्जरवेशन 13 (1) : 10-13

3. श्रीवास्तव, आ.सी. (1984), फिल्म लाइन्ड टंकाज फार हिली रिजन, इन्डियन फार्मिंग XXX III (II) : 27-31